संगीत समीक्षक : गजेन्द्र नारायण सिंह

नीलम कुमारी

शोधार्थी

स्नातकोत्तर संगीत विभाग

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

संक्षिप्त सार

कला कि उत्पत्ति अथवा विकास दिनों में या एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता। भाषा का विकसित रूप आज जो हमारे सम्मुख है वह अनेकों आयामों से गुजरा है। इसी प्रकार संगीत साहित्य एवं अन्य कलाओं के उदगम् से उनके विकास तक कोई सदियों और अनेक विद्वानों के योगदान का फल है।

श्रीष्टि की रचना के साथ ही संगीत का भी जन्म हुआ। प्रकृति की ओर से मानव को अन्य जीव जन्तुओं की तुलना में अधिक सोचने–समझने की शक्ति प्राप्त है। अपनी चेतना शक्ति के आधार पर ही मानव विकास की ओर बढ़ता गया तथा संगीत का भी विकास करता गया। साहित्य और कला के संबंध में मनुष्य का प्रयास निरन्तर विकासमान रहा है।

शब्द कुंजी : साहित्य, कला, गायन, वादन और नृत्य आदि

'सम' और 'गित' दो शब्दों के संयोग से 'संगीत' शब्द बनता है। सम का अर्थ है 'अच्छा' वाद्य और नृत्य इन दोनों के मिलने से गीत का पूर्ण स्वरूप बन जाती है। अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों कलाओं के सम्मिलित रूप को संगीत कहते हैं।

स्ंगीत की सृष्टि 'नाद' से हुई है। नाद व्रह्य स्वरूप है अतः संगीत एक प्रकृतिक तत्व है जिसका सीधा संबंध कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसलिए कहा गया हैः–

"पूजात का कोटिगुणं स्तोंत्रं स्तोत्रत्कोटिगुणों जपः।

जपातकोटिगुणं गान गानात्परत्तंर नहीं।।"

अर्थात् पूजा से करोड़ गुना श्रेष्ठ स्तोत्र है, स्तोत्र से करोड़ गुना श्रेष्ठ जप है और जप से करोड़ गुना श्रेष्ठ गान है। अतः गायन से बढ़कर उपासना का कोई अन्य साधन नहीं हैं।

परंतु कला समीक्षा एक दुष्कर प्रक्रिया है। कला के सैद्धांतिक और क्रियात्मक दोनों पक्षों पर अधिकार रखने वाले पं0 गजेन्द्र नारायण सिंह की सम्यक दृष्टि सार्थक लेखन का परिचय है, आगहों के वशीभूत होकर नहीं।

कला प्रस्तुतियों के कुछ निश्चित विधान होते हैं। विशेषकर शास्त्रीय संगीत के निष्पादन में नियमों का उल्लंघन नहीं हो सकता। एक विशेष परिवेश के अंदर ही संगीतकार को अपनी कला का प्रदर्शन करना पड़ता है।

उपर्युक्त प्रसंग में पं0 गजेन्द्र नारायण सिंह का नाम उल्लेखनीय है। श्री गजेन्द्र नारायण सिंह ख्यातिलब्ध संगीत कलाविद इतिहास कार तथा कला समीक्षक हैं।

संगीत की न तो समीक्षा हो सकती और न उसके अन्तर्गत किसी प्रकर की तुलना हो सकती है। क्योंकि भारतीय परिवेश में संगीत की साधना और शास्त्री अध्ययन एवं विवेचन मूलतः व्यक्तिनिष्ठ है। संगीत समीक्षा एवं संगीत के अंतर्गत तुलना ये पूर्णतया पाश्चात्य अवधारणा है। भारतीय संगीत के अंतर्गत इस तरह की कोई परिपाटी नहीं रही। अतैव भारतीय संगीत की प्रकृति, उसका स्वरूप, उसे व्यवहार मे ंलाने की पक्रिया पश्चिम से बिल्कुल भिन्न है। भारतीय परम्परा में संगीत साधना का पार्याय है और उसे अष्टांगिक योग में र्स्वोपरि रखा गया है। इसलिए पाश्चात्य संगीत की तरह भारतीय संगीत का प्रयोजन महज दिलबहलाव और मनोरंजन है। बल्कि यह एक स्वस्थ मानसिक खुराक है– रूहानी गिजा है।

खासकर शास्त्रीय संगीत जिसे संगीत के गुणियों ने 'बंधन में श्रृंगार' कहा है यानि एक निर्धारित दासरा, कायदा, वसूल, तहजीब और शिष्टाचार के अर्न्तगत राग संगीत यानि शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुती की जाती है।

उपरोक्त विचार संगीत कला विद्वान श्री गजेन्द्र नारायण सिंह रखते हैं। जबकि संगीत की दुनियाँ के अन्य विद्वानों की सोच, नजरिया और संगीत को सुनने समझने तथा उसका मूल्यांकन करने का तौर तरीका गजेन्द्र नारायण जी से भिन्न हो सकता है।

श्री गजेन्द्र नारायण सिंह का जन्म सहरसा (बिहार) जिला के धनदोहा गाँव में 10 सितम्बर 1939 ई0 में सम्भ्रान्त परिवार में हुआ। आज से कोई चार सौ वर्ष पूर्व इनके पुरखे राजस्थान से मिथिलांचल में आकर बस गए। श्री सिंह आमेर के कछवाह क्षत्रिय हैं।

श्री गजेन्द्र नारायण सिंह को संगीत का संस्कार जनमजात अपने मातृपक्ष से प्राप्त हुआ। इन्होंने गुरू–शिष्य परम्परा के तहत ग्वालियर घराना के सुविख्यात गायक संगीत चूड़ामणि 'पूद्मभूषण' पंड़ित विनायक बुआ पटवर्धन से तालिम हासिल की। इसके अतिरिक्त इन्होंने घरानेदार संगीतज्ञों से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया।

कलाएँ शौकिया एवं व्यावसायिक लेखन के कुपरिणाम का शिकार होती जा रही है। संगीत की दुनियाँ में भी खेमेबाजी, गुटपरस्ती आ गयी है। स्वस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिससे सच्चाई का सम्बल लेकर सांगीतिक मूल्यों की पहचान करायी जा सके।

पद्मश्री गजेन्द्रनारायण जी की मान्यता है कि संगीत एक गुलदस्ता है जिसका हर फूल महत्वपूर्ण है। हर पुष्प का अपना रंग है, अपनी खुशबू है और पहचान है। अंग्रेजी के वरिष्ठ संगीत–समीक्षक श्री नीलाक्ष दास गुप्ता द्वारा लिखित एक लेख ''हू इज ग्रेटरः रविशंकर और विलायत खाँ।'' इसमें इन्होंने दोनों वादकों के संगीत को जुदा–जुदा मानते हुए भी दोनों की खामियों और खूबियों को दर्शाते हुए एक से दूसरे को बड़ा–छोटा दिखाने का निरर्थक प्रयास किया है। जबकि दोनों ही अपने फ़न में बेमिसाल हैं। ''हू इज़ ग्रेटर'' का सवाल कला की मर्यादा के विपरीत है। कौन अच्छा है, कौन बुरा

है या श्रेष्ठ – निकृष्ट की जाँच– परख का कोई सही मापदण्ड हमारे पास नहीं है। समीक्षा–लेखन के औचित्य को झुठलाया नहीं जा सकता। कला–प्रस्तुतियों के कुछ निश्चित विधान हैं। विशेषकर शास्त्रीय संगीत के निष्पादन में नियमों का उल्लंघन नहीं हो सकता। एक परिवेश के अंदर ही संगीतकार को अपनी कला का प्रदर्शन करना पड़ता है। अर्थात् शास्त्रीय संगीत का श्रृंगार बन्धन के अंतर्गत किया है। स्वच्छन्द बर्ताव अरूचिकर हो जाता है। बड़े कलाकारों ने इस मान्यता को ज़माने से, अपनी प्रस्तुतियों द्वारा पुख्ता किया है। कला प्रस्तुति मौलिक सृजनशीलता की द्योतक होती है। कला प्रस्तुति कुआँ नहीं जिसका प्रवाह अवरूद्ध होता है। परंतु कला–निष्पादन बरसाती सोता भी नहीं हो सकता, जो अनियंत्रित तथा अमर्यादित होता है। इस मूल मंत्र का ध्यान रखते हुए महान कलाकारों ने प्रयोग करते हुए नियमों के कटघरे का उल्लंघन नहीं किया। शैलीगत विशिष्टताओं को विकृत नहीं किया। परम्परा का बुद्धिमत्तापूर्वक निर्वाह किया। कला में रचनात्मक तत्व या सृजनशीलता को लेकर आज ख्वामखाह वितण्डा खड़ा किया जाता है। जो कुछ परम्परागत है, घरानेदार है उसे 'क्रियेटिव' नहीं मानने की एक साज़िश– सी चल पड़ी है। ''मॉडर्न पेण्टिंग'' की तरह शास्त्रीय संगीत ऊटपटांग नहीं हो सकता। रचनात्मकता और नवीनता के नाम पर कुछ भी कर डालने की प्रवृत्ति से कला में 'सतयम्–शिवम्–सुन्दरम' का बोध नहीं कराया जा सकता है। हाथ के बल चलने पर नयेपन की झलक मिल सकती है, पर ऐसा करना हमारी सुरूचिसम्पन्नता का परिचायक नहीं हो सकता है।

श्री सिंह के अनुसार, परम्परा–निर्वाह का अर्थ जड़ता या लकीर का फ़कीर होना नहीं होता। परम्परा कला–सृजन में में प्रेरणा और उर्जा देने का कार्य करती है। परम्परा नदी के प्रवाह की तरह है– जैसे नदी निरन्तर अपनी धारा में समाये कचरों को दोनों किनारे उलीलती हुई निरन्तर प्रवहमान रहती है उसी तरह परम्परा भी अवांछनीय तत्वों को किनारे लगाती हुई गतिमान रहती है।

इतने गुणियों से संगीत का क्रियात्मक तथा सैद्धांतिक ज्ञानार्जन करके भी इन्होंने अपने को पेशेवर संगीत प्रस्तोता के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास नहीं किया। बल्कि इनका कहना है कि संगीत पेशा और तिजारत की चीज़ नहीं है। इसलिए इन्होंने संगीत के संवर्धन–संरक्षण में अपने को लगा दिया।

बिहार सरकार द्वारा स्थापित 'बिहार राज्य कला अकादमी' (वर्तमान में बिहार राज्य संगीत नाटक अकादमी) में संस्थापक सचिव के पद पर रहते हुए इन्होंने राज्य के संगीतकारों तथा सांगीतिक गतिविधियों को नयी दिशा दी और उल्लेखनीय कार्य किए। संगीत के गंभीर अध्येता होने के कारण संगीत सुनना, गुनना और उसका मनन करना इनकी रग–रग में समाया है। शास्त्रीय संगीत की पुरानी परम्परा के पृष्ठपोषक होते हुए भी श्री सिंह अन्वेषी दृष्टि रखते हैं– हिंदुस्तानी संगीत की दुनियाँ में प्रचलित उन तमाम धारणाओं को नकार कर चलते हैं जो प्रमाण की भित्ति पर टिकी नहीं होती। श्री सिंह को महफिलों में संगीतकारों के सानिध्य से तथा उनके साथ उठने–बैठने और सोहबत में रहने के कारण संगीत के गूढ़ रहस्यों और बारीकियों को समझने के अवसर प्राप्त हुए।

श्री गजेन्द्रनारायण सिंह ने अनेकों पुस्तकों की रचना की है जो संगीत तथा उसके विभिन्न घरानाओं तथा शैलियों, संगीतकारों, गायिकाओं, नृत्यांगनाओं से संबंधित हैं। ये सभी पुस्तकें उस आधारशिला का काम कर रही है जो आधुनिक भारतीय संगीत कला और संस्कृति के इतिहास लेखन को आधार भूमि प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है। संगीत पर लिखते हुए श्रीसिंह एक साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य की फाँकों से गुजरने लगते हैं।

संदर्भ–सूची

1. भारतीय संगीत का इतिहास – राजीव द्विवेदी
2. सुरीले लोगों की संगत – गजेन्द्रनारायण सिंह
3. स्वरगंध – गजेन्द्रनारायण सिंह
4. महफिल – गजेन्द्रनारायण सिंह
5. सप्तक – गजेन्द्रनारायण सिंह
6. ये अधकचरे संगीत समीक्षक – गजेन्द्रनारायण सिंह